शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 54/2 | अप्रैल-जून 2021 | 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 01342-263232, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ० मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ० अशोककुमार
डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

लोकगीतों में नायिका-भेद वर्णन/ **डॉ॰ सुमन सिंह** 9

किन्नरों की आर्थिक, शिक्षा एवं स्वास्थ्य-संबंधी समस्या 'पोस्ट बॉक्स नं॰ 203 नाला सोपारा' के संदर्भ में/ **डॉ॰ महेंद्र रघुवंशी** 16

मृणाल पांडेय के कथासाहित्य में राजनीतिक नारी मनोविज्ञान/ **डॉ॰ संजय विक्रम ढोडरे** 19

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिंदी ग़ज़ल में स्त्री-समानता का प्रश्न/ **डॉ॰ राजेश कुमार** 24

बलदेव वंशी के काव्य में चित्रित देश-विभाजन की त्रासदी/ **प्रा॰ सुनील लक्ष्मण वळवी, डॉ॰ संजय विक्रम ढोडरे** 30

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल का बहुरंगी और समृद्ध नाटक-संसार/ **डॉ॰ शकुंतला कालरा** 34

अरुणाचल प्रदेश स्थित न्यिशी जनजाति की लोककथाओं की विशेषताएँ/ **डॉ॰ जोराम आनिया ताना** 43

पुरुषवादी सामाजिक वर्जनाएँ एवं नैतिकता के बदलते मानदंड : 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'/ **मीनू भाटी, डॉ॰ बीना शर्मा** 51

ब्रज साहित्यिक रचनाओं में इतिहासबोध : केशवदास के ऐतिहासिक काव्य के संदर्भ में/ **डॉ॰ राकेश कुमार** 61

रजनी गुप्त का 'कितने कठघरे' और मैत्रेयी पुष्पा का 'गुनाह-बेगुनाह' का तुलनात्मक अध्ययन/ **फराह जमील, डॉ॰ रूबी जुत्शी** 67

ज्ञानप्रकाश विवेक के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन/ **सुमन मलिक, डॉ॰ राजिन्द्र पाल सिंह 'जोश'** 71

समकालीन कथासाहित्य में कमलेश्वर का समाजबोध/ **ममता चंडावला** 78

लैंगिक समानता और समावेशी शिक्षा : एक सामाजिक विश्लेषण (नवीन शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में)/ **इंदिरा, डॉ॰ विमलेश शर्मा** 83

सूरजसिंह नेगी के कथासाहित्य में अभिव्यक्त वृद्ध जीवन/ **पूजा** 89

निरालाकृत 'तुलसीदास' का काव्यसौंदर्य/ **डॉ॰ अनीता अग्रवाल** 93

गोविंद मिश्र एवं उनका रचना-संसार/ **कु॰ गीता, डॉ॰ स्वर्णलता कर्दम** 100

समकालीन हिंदी कविता में संवेदना एवं सरोकार/ **डॉ॰ अंजू** 107

रूपसिंह चंदेल के उपन्यासों में स्त्रीजीवन का यथार्थ/ **संगीता** 115

पचासोत्तर भारतीय रंग-आंदोलन एवं महिला रंगकर्मियों की भूमिका : हिंदी तथा मलयालम के विशेष संदर्भ में/ **डॉ॰ अपर्णा वेणु** 119

कविवर हरमहेंद्र सिंह बेदी और उनका काव्याकाश/ **तनु भारद्वाज** 123

मंजुल भगत की कहानियों में नारी-दशा/ **सुनिता यादव** 129

 ISSN 0975-735X

निरुपमा बरगोहाई और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारीवाद/ **सुमि शर्मा** 132
नरेंद्र कोहली एवं उनकी साहित्य-साधना/ **प्रतिभा** 139
असम की राभा जनजाति : एक अवलोकन/ **डॉ॰ राजकुमारी दास** 151
आधारभूत संरचना के विकास में बजट 2021 का योगदान/ **डॉ॰ राजेंद्र कुमार** 155
मानवाधिकार का अर्थ एवं महत्त्व/ **पूजा** 161
मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण स्त्री का संघर्ष/ **डॉ॰ बिजेन्द्र कुमार** 165
ज्ञानप्रकाश विवेक के साहित्य में आधुनिक युगबोध/
नीरू रानी, डॉ॰ कामराज सिंधु 171
बालश्रम और कानूनी अधिकार/ **वंदना** 174
बौद्ध पालि साहित्य में वर्णित महात्मा बुद्ध का कृषिविषयक दृष्टिकोण/
डॉ॰ प्रशांत कुमार, डॉ॰ अजीत कुमार राव 177
मानवीय चेतना पर दस्तक देते कुसुम अंसल के नारीपात्र/
डॉ॰ विक्रम सिंह, डॉ॰ सुनीता 183
धरती से जुड़े कवि : भगवतीलाल व्यास/ **डॉ॰ नीतू परिहार** 187
अलका सरावगी के कथासाहित्य में सामाजिक परिदृश्य/ **दिनेशचंद्र भट्ट** 192
परिसर बादशाहीथौल टिहरी परिसर, गढ़वाल/ **प्रो॰ कुसुम डोभाल मिश्र** 192
प्रसाद के नाटकों के पात्रों में अंतर्द्वंद्व/ **डॉ॰ वीना सोनी** 196
कोविड-19 के दौरान ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की चुनौतियाँ एवं समाधान/
अशोक कुमार, डॉ॰ सुधीर मलिक 202
लघुकथाओं का सुंदर गुलदस्ता : आस्था के फूल/ **प्रो॰ नीरू** 206
मुरैना के ककनमठ मंदिर में अंकित दिक्पाल देवता इंद्र का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप/
प्रो॰ प्रभात कुमार, गौरव सिंह 211
श्रीकृष्णचंद्रिका : एक अद्भुत रचना/ **डॉ॰ निर्भय शर्मा** 216
संत कबीर का समाजदर्शन/ **डॉ॰ लक्ष्मी गुप्ता** 221
भारतीय धर्म (संस्कृति) और अंबेडकर की दृष्टि/ **उमेश कुमार** 227
कोरोना महामारी के परिप्रेक्ष्य में संत कबीर के समाज सुधारक रूप की उपादेयता/
डॉ॰ नवनाथ गाड़ेकर/ 232
समकालीन हिंदी कविता में अंबेडकरवादी चिंतन, **डॉ॰ संजय नाईनवाड़** 238
'उर्वशी' काव्य में चित्रित कामाध्यात्म का दर्शन : वर्तमान संदर्भ/ **रमेशचंद सैनी** 244
आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंधों की सामाजिक दृष्टि/
सैफ रजा खान 249
काशी का अस्सी : सारांशिक रूप/ **नेहा गुप्ता** 254
सुनीता जैन द्वारा लिखित उपन्यास 'मरणातीत' : एक विश्लेषण/ **नीलम देवी** 258
मानवीय संवेदनाओं का अभाव : हृदयेश कृत 'हत्या' उपन्यास के विशेष संदर्भ में/
ज्योतिदेवी, डॉ॰ सुधारानी सिंह 263

उषाकिरण खान के उपन्यास 'गई झुलनी टूट' में लोकजीवन/
अलका कुमारी, प्रो॰ सुचित्रा मलिक 267
चंद्रकांता की कहानियों में पारिवार : भूमंडलीकरण के संदर्भ में/
ए॰ निशा, डॉ॰ बी॰ कामकोटि 271
समकालीन हिंदी कविता में दलित चेतना का सौंदर्यशास्त्र/ **प्रदीप कुमार ठाकुर** 275
उदयप्रकाश की कहानियों में सामाजिक समस्याएँ : दलित चेतना के संदर्भ में/
मिनी॰ एस॰, डॉ॰ बी॰ कामकोटि 279
मधु कांकरिया के कथासाहित्य में महानगरीय झुग्गी-झोपड़ी जीवन/ **ऋतु** 282
किसान जीवन की त्रासदी : 'अकाल में उत्सव' के संदर्भ में/
मु॰ जाहिद रजा सिद्दीकी 288
काशीनाथसिंह : कहनी उपखान के प्रथम खंड 'एक शुरुआत' की कहानियों से
गुजरते हुए, **डॉ॰ (श्रीमती) निर्मला त्रिपाठी** 294
निराला की रचनाओं में राष्ट्रीयता की भावना और मुक्ति का स्वर/
डॉ॰ उमेश कुमार पांडेय 299
21वीं सदी हिंदी कहानी में चित्रित पारिवारिक जीवन आधुनिकता का प्रभाव :
बदलती संवेदना, मूल्य व संबंध/ **रचित पांडेय, डॉ॰ क्रांतिबोध** 306
श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक रोग का स्वरूप एवं समाधान :
एक विवेचनात्मक अध्ययन/ **मनोज रतूड़ी, डॉ॰ सुरेंद्रप्रसाद रयाल** 312
सामाजिक संगठन एवं योग/ **डॉ॰ संदीप वेदालंकार** 318
पर्यावरण अवनयन एवं मूल्यांकन और नियंत्रण के उपाय/ **अभिषेक कुमार यादव** 327
प्रवासी साहित्यकार तेजेंद्र शर्मा का साहित्यिक अवदान/ **डॉ॰ योग्यता भार्गव** 333
वायुप्रदूषण और भारत/ **सुदीप पांडेय** 342
स्त्री लिंगी विमर्श और भाषा/ **डॉ॰ सोफिया राजन** 347
कबीर के काव्य में उलटबासियाँ एवं प्रतीक/ **डॉ॰ बी॰आर॰ बद्री** 351
असगर वजाहत कृत नाटक 'गोडसे/गांधी.कॉम' में वैचारिक द्वंद्व/ **सोनम सिंह** 355
डॉ॰ रमेश पोखरियाल 'निशंक' के साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन का
समाज को अवदान/ **ममता कुँवर, प्रो॰ सुचित्रा मलिक** 359
आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के संदर्भ में हिंदी और पंजाबी के उद्भव आधार/
सपना सैनी, डॉ॰ सुधा जितेंद्र 365
अलका सरावगी के कथासाहित्य पर भूमंडलीकरण का प्रभाव/
बिरारी पोपट भावराव 373
डॉ॰ परशुराम शुक्ल के बालनाटकों में मंचीयता/ **तितिक्षा जी वसावा** 376
The Concept Of Idial Teacher And His Role In Dharmashashtra/ **Jyoti goud** 381
Impact of Rural Development Programmes .../ **Dr.Reenu Rani Mishra** 384
रामेश्वर कांबोज की साहित्यिक साधना का आलोचनात्मक विन्यास : गद्य-तरंग/
प्रो॰ स्मृति शुक्ल 388

 ISSN 0975-735X

संत कबीर का समाजदर्शन

डॉ॰ लक्ष्मी गुप्ता
सहायक प्रवक्ता, हिंदी
गुरु नानक गर्ल्स कालेज, यमुनानगर (हरि॰)

हिंदी में संत साहित्य का आरंभ कबीर से माना जाता है। मध्यकालीन संतों में कबीर अग्रगण्य हैं। वे कवि, धर्मोपदेशक, सुधारक और श्रेष्ठ विचारक थे। जिस युग में कबीर का आविर्भाव हुआ वह युग देश के दुर्दिन और दुर्भाग्य का युग था। कबीर ने अपने युग के कुरूप ढाँचे को अपनी वाणी द्वारा चित्रित करने का प्रयास किया तथा मिथ्या आडंबर, बाह्याचार और अंधविश्वास में डूबी हुई जनता को मोक्ष का मार्ग दिखाने का कार्य किया। यही कारण है कि सुधी समीक्षक कबीर को धर्मगुरु, समाज सुधारक, लोक-स्रष्टा, भविष्य-द्रष्टा, दार्शनिक एवं कर्मयोगी जैसी उपाधियों से विभूषित करते हैं। वास्तव में कबीर एक उच्चकोटि के समाज चिंतक एवं धर्मगुरु थे। उन्होंने तत्कालीन समाज में प्रचलित वैषम्य का विरोध करके साम्य स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने किसी भी मतवाद या पंथ का प्रवर्तन नहीं किया, अपितु मानव-जीवन के लिए जिसे श्रेष्ठ समझा, उसी का अनुसरण करते हुए समाज को सद्मार्ग दिखाने का प्रयास किया।

बीज शब्द–आडंबर, बाह्याचार, अंधविश्वास, समाजदर्शन, सुधारक, प्रवर्तन, सद्मार्ग।

किसी भी देश का साहित्य अपने युग की सामाजिक चेतना से संश्लिष्ट होता है जिस कारण साहित्य में आत्मबोध व युगबोध दोनों भाव एक साथ निहित रहते हैं। धरती पर महापुरुषों का जन्म युग विशेष की परिस्थितिजन्य ही होता है। जो समाज का दिशा निर्देश करते हुए नवीन सामाजिक मान्यताओं की स्थापना करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। जिससे एक ओर सामाजिक ढाँचा सुदृढ़ होता है तो वहीं दूसरी ओर समाज में नवीन मानव मूल्यों की स्थापना भी होती है। हिंदी साहित्य का काव्य वैभव विपुल और बहुरंगी है। साहित्य के दीर्घकालीन इतिहास में मध्य-युग का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक संत कबीरदास का व्यक्तित्व व कृतित्व अद्भुत तथा विलक्षण है। 'कबीर का व्यक्तित्व संपूर्ण रूप में उनके युग की उन परिस्थितियों की उपज है जिन्होंने तत्कालीन हिंदू जनता का जीवन दूभर बना दिया था। अपनी-अपनी खिचड़ी पकाने वाले मत-मतांतरों ने उसे भ्रम के पर्दों से ढक रखा था। कबीर ने गाढ़े समय पर लोकमानस का नेतृत्व किया और अपने प्रखर व्यक्तित्व द्वारा बाह्याचार एवं ढकोसलों की धज्जियाँ उड़ा दीं। बाद में, कबीर को युग-चेतना का जनवादी कलाकार स्वीकार किया जा सकता है।'[1]

संभवत: इसी कारण डॉ॰ रामचंद्र तिवारी ने कहा है कि 'हिंदी-साहित्य के पूर्व मध्यकालीन भक्त साधकों एवं कवियों में कबीरदास का स्थान अन्यतम है। उनके व्यक्तित्व की प्रखरता, चरित्र की निर्मलता, स्वभाव की सहजता एवं साधन की उच्चता की सराहना उनके विरोधियों एवं समर्थकों ने समान रूप से की है। उनकी वाणी में अनुभूति की सच्चाई है। वे पूर्ण सत्य का

ISSN 0975-735X

साक्षात्कार करनेवाले अत्यंत संवेदनशील सरल हृदय संत थे। उन्होंने जो कुछ कहा है वह सत्य-पूत है। कबीर अकेले संतकवि हैं जिन्होंने समस्त धार्मिक आडंबरों एवं बाह्याचारों को नकार कर सहज जीवन-पद्धति को सर्वोच्च मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[2]

कबीर के अभ्युदय से पूर्व उत्तर-भारत में अनेक धार्मिक साधनाएँ, विशृंखलताएँ, अस्त-व्यस्तताएँ प्रचलित थीं। वैष्णव भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उमड़कर उत्तर भारत में प्रवाहित हो चुका था और निम्नवर्गीय समाज इस्लाम से प्रभावित हो रहा था। इसके साथ ही सूफी साधक अपनी उदारता व सात्विकता के कारण भारतीय जनमानस के निकट आ चुके थे। ऐसे परिवेश में संत कबीर का आगमन भारतीय समाज में किसी वरदान से कम नहीं था। उन्होंने अपने समय की समस्त दुर्बलताओं को लक्षित किया और अपने निजी अनुभवों को आधार बनाकर धर्म साधना के क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न की। कबीर का युग दुर्दिन और दुर्भाग्य के आह्वान का युग था। नैतिक व सामाजिक दृष्टि से समाज खोखला हो चुका था व चहुँओर वर्णाश्रम धर्म की विकृतियाँ व्याप्त थीं। कबीर ने इन सबके मूल में निहित अज्ञानता के आलंबन को देखा और उसे दूर करने का प्रयास किया।

निराशा एवं दुविधाग्रस्त हिंदू जाति का एक दैदीप्यमान पथ प्रशस्त करने के लिए कबीर का जन्म हुआ था। एक समरस समाज स्थापना की चरम आवश्यकता की बेला में वे जन्म से विवाद लेकर काशी में पैदा हुए और जीवनपर्यंत विवादास्पद बने रहे। कबीर सच्चे अर्थों में संत थे। साधना या भक्ति ही उनका लक्ष्य था, परंतु भारतीय समाज की रूढ़ियों को जिस हद तक कबीर ने तोड़ा, उसकी तुलना उपलब्ध नहीं है। संत कबीर सच्चाईयों से आँख मूँदने वाले संत नहीं थे। वे समाज की विकृतियों पर जबरदस्त चोट करने पर तुले हुए थे। किसी विशेष धर्म के प्रति उनका कोई दुराग्रह नहीं था लेकिन मिथ्याचारों से उन्हें सख्त शिकायत थी। कविता उनके लिए एक तेज औजार की तरह थी, जिससे वे बराबर समाज को तराशते हुए उसके भीतर से एक सहज व स्वस्थ मानवीय समाज निकाल रहे थे।

संत साहित्य का हिंदी में आविर्भाव कबीर के साथ माना जाता है। रामानंद के शिष्य के रूप में कबीर ने भक्ति की दीक्षा ली थी, किंतु अपनी प्रतिभा और गुरु ज्ञान के प्रकाश में उन्होंने नवीन मौलिक विचारधारा का प्रवर्तन किया, जिसे संत या निर्गुण संप्रदाय कहते हैं। उस समय तक एक ओर देश में प्राचीन पौराणिक धर्म और समाज व्यवस्था प्रचलित थी तो उसके साथ आने वाला एक आक्रमणकारी संघर्ष था, जो इस्लाम धर्म के रूप में नए मुस्लिम विजेताओं के साथ इस देश में आया। अत: उसका संघर्ष जब देश की प्रचलित मान्यताओं से हुआ तो सारा समाज आंदोलित हो उठा। प्राचीन रूढ़िवादी व्यवस्था इस नए धक्के से ध्वस्त होने लगी। इस विगलित स्थिति में कबीर, नया प्राण और नई शक्ति लेकर मानस धरातल पर अवतरित हुए।

कबीर वर्ण, जाति व धर्म के सर्वथा विरोधी थे। मानव-मानव के मध्य विभेद उत्पन्न करने वाले बाह्याडंबरों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति कबीर ने कठोर रुख अपनाया। उनकी मान्यता थी कि मानव-मात्र की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है। सभी में ईश्वर व्याप्त है। इसी कारण कबीर ने ऊँच-नीच के भेद को स्वीकार नहीं किया–

जो तू बाँभन बँभनी जाया, आन बाट ह्वै काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकानी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।

 ISSN 0975-735X

कबीर सच्चे समाज सुधारक थे। जिन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों की भलाई-बुराई देखी एवं परखी, और केवल कटु आलोचना ही नहीं की, अपितु दोनों धर्मावलंबियों को मार्ग दिखलाया, जिस पर चलकर मानव-मात्र का कल्याण हो सकता है। वे हिंदू-मुस्लिम ऐक्य के समर्थक थे तथा किसी भी प्रकार के मतवाद में बँधे न होने के कारण स्वतंत्र उपदेष्टा थे। यही कारण है कि कबीर ने जो कुछ कहा है निष्पक्ष और निर्द्वंद्व होकर कहा है और 'अरे इन दोऊन राह न पाई' कहकर दोनों मिथ्या मार्गगामियों को ठीक राह पर लाने का प्रयत्न किया है।'[3]

'कबीर का युग व्यक्तिवाद का युग था। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'और अपनी अपनी ढफली, अपना-अपना राग' वाली कहावतें प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो रही थीं। कबीर ने इस व्यक्तिवादिता का उस युग के विविध साधकों का आडंबर प्रधान साधनाओं का चित्र उपस्थित करके उसका वर्णन किया है।'[4]

कबीर ने अपनी साखियों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक जीवन के बड़े मार्मिक और सजीव चित्र अंकित किए हैं। मूर्तिपूजा और तीर्थव्रत आदि का कबीर के समय दौर था। प्रस्तर पूजा, जप-तप, तीर्थ में केवल अंध-विश्वास देखकर उन्हें कहना पड़ा–

जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास।
सूबैं सैंवल सेविया, यौं जग चल्या निराश।[5]

इसके साथ ही कबीर ने मुल्ला, 'अजा' और 'शेखर की हज' पर भी कटुक्तियाँ कीं तथा सामाजिक जीवन की कुत्सा पर अपने तीखे व्यंग्य छोड़े हैं जिनका परिणाम केवल तिलमिलाहट में ही व्यक्त होता है–

हिंदू अपनी करैं बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वैश्या के पाइन पर सोवे यह देखो हिंदुवाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा-मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में करैं सगाई।[6]

यह कहना अनुचित न होगा कि कबीर ने अपने युग के कुरूप ढाँचे को अपनी वाणी में चित्रित किया है। कबीरदास को यह कभी भी गवारा नहीं था कि मानव आपस में भेदभाव की दीवार खड़ी करके परस्पर कटुतापरक अलगाव की नीति अपनाए। कबीर ने अपने को ही सब कुछ समझने तथा दूसरों के दोषों पर बार-बार दृष्टिपात करने की प्रवृत्ति पर कुठाराघात करके यह बताया कि वास्तव में हम ही अपने-आपको सुधार लें तो समाज में स्थित वर्ग या संप्रदाय का प्रभुत्व स्वयमेव समाप्त हो जाएगा। अत: उन्होंने कहा है कि–

बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिल्या कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।

वास्तव में, व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। अतएव यदि व्यक्ति शुभ विचारों को हृदयंगम कर ले तो समाज की अनेक विशृंखलताओं का समाधान अपने आप निकल आएगा। कबीर के काल में अनेकानेक जातियों तथा उपजातियों के विकास के साथ समाज का चतुर्वर्ण-विभाजन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया था, परंतु उसका ढाँचा चला आ रहा था। धर्मशास्त्रों के आधार पर प्रस्तुत की गई वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या स्वाभाविक नहीं रह गई थी। उनका कहना है कि 'यदि सृष्टिकर्ता का उद्देश्य प्रचलित वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों को महत्त्व देना होता तो वह

संत कबीर को यह मालूम था कि मंदिर और मस्जिद समाज की एकता को खंडित करने वाले थे, अतएव उनके संबंध में जो भ्रम था उसके विरुद्ध उन्होंने एक बहुत ऊँची आवाज उठाई। उनका कहना था कि यदि परमात्मा मूर्ति में रहता है, मंदिर में उसका निवास है और अल्लाह मस्जिद में रहता है तो दूसरे म्यानों में किसका वास है, उनका स्वामी कौन है?

जिस प्रकार अबोध बालक-बालिका, गुड़ियों-गुड्डों से अपने मन में बहलाते रहते हैं, उसी प्रकार तत्कालीन मानव समाज देवता-द्विज, भवानी आदि की उपासना में अपने कष्टों का परिष्कार करने की योजना बना रहा था। समाज झूठे सुख मानकर उसी में रमा हुआ था। बाह्याडंबरों के कुहासे में भटके हुए समाज को देखकर कबीर ने सीख दी–

पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने वापुये, रहै आंगना टेढ़ा।[7]

कबीर के समय में वेद-पुराण, कुरान आदि ग्रंथों के प्रति समकालीन जनता में अंध-विश्वास और अंधश्रद्धा भी प्रतिष्ठित थी। जिसका उपयोग करके उनके नाम पर पाखंड और आडंबरों का प्रसार हो रहा था। जो समाज की प्रगति में बाधक था। कबीर ने षट्दर्शनों को अनेक पाखंडों का जनक तथा जनसामान्य को उनसे व्याकुल तथा अज्ञानी बताकर उनकी अंधश्रद्धा तथा उनके नाम पर धार्मिक जगत में फैले हुए आडंबरों को दूर करने का प्रयास किया।

समकालीन अन्य मान्यताओं की भाँति इस युग में तीर्थ एवं काशी से मुक्ति-विषयक अंधविश्वासों में रूढ़ि का समावेश होने के कारण मिथ्याडंबर तथा स्वेच्छाचार आदि को स्थान मिल गया था। इसी अंधविश्वास को दूर करने के लिए कबीर ने जीवन के अंतिम क्षणों में काशी छोड़कर मगहर में निवास किया। इसके साथ उन्होंने व्रत तथा उपवास की मान्यता को, जो उस बाह्याचार और पाखंड में परिवर्तित हो चुकी थी, उसका भी विरोध किया और जनमानस को बताया कि प्रत्येक क्षण में ईश्वर की शक्ति संचरित है। उसकी अनुज्ञा के बिना सृष्टि का कोई कार्य संपादित नहीं होता है।

भक्त और भगवान के पारस्परिक सम्मिलन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्ति पश्चात् कबीर को अनुभव हुआ कि यह सारी कर्मकांडी क्रियाएँ व्यर्थ हैं और ईश्वरीय अनुभव केवल भाव की एकात्मकता से हो सकता है जिसमें किसी भी वर्ण, जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का भेद अनावश्यक है। उनका कहना था–

संतो सहज समाधि भली।
साई ते मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अंत चली।
आँख न मूँदूँ, कान न रूँधू, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँस-हँस देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ।
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।

कबीर का काव्य उनके समाज दर्शन का पूरा प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में समर्थ है। उस युग में प्रचलित विभिन्न मत-मतांतरों तथा बाह्याडंबरों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। जिसमें उनका युगप्रवर्तक व्यक्तित्व प्रकाश में आता है।

कबीर के समय में धर्म के पवित्र रूप को बाह्याचारों और असत्य ने इस प्रकार आच्छादित

 ISSN 0975-735X

उनकी सम्यक् पहचान के लिए उनके ललाटों पर तीन रेखाएँ बनाकर ही इन्हें उत्पन्न करता।'

संत कबीर को यह मालूम था कि मंदिर और मस्जिद समाज की एकता को खंडित करने वाले थे, अतएव उनके संबंध में जो भ्रम था उसके विरुद्ध उन्होंने एक बहुत ऊँची आवाज उठाई। उनका कहना था कि यदि परमात्मा मूर्ति में रहता है, मंदिर में उसका निवास है और अल्लाह मस्जिद में रहता है तो दूसरे म्यानों में किसका वास है, उनका स्वामी कौन है?

जिस प्रकार अबोध बालक-बालिका, गुड़ियों-गुड्डों से अपने मन में बहलाते रहते हैं, उसी प्रकार तत्कालीन मानव समाज देवता-द्विज, भवानी आदि की उपासना में अपने कष्टों का परिष्कार करने की योजना बना रहा था। समाज झूठे सुख मानकर उसी में रमा हुआ था। बाह्याडंबरों के कुहासे में भटके हुए समाज को देखकर कबीर ने सीख दी–

पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने वापुये, रहै आंगना टेढ़ा।[7]

कबीर के समय में वेद-पुराण, कुरान आदि ग्रंथों के प्रति समकालीन जनता में अंध-विश्वास और अंधश्रद्धा भी प्रतिष्ठित थी। जिसका उपयोग करके उनके नाम पर पाखंड और आडंबरों का प्रसार हो रहा था। जो समाज की प्रगति में बाधक था। कबीर ने षट्दर्शनों को अनेक पाखंडों का जनक तथा जनसामान्य को उनसे व्याकुल तथा अज्ञानी बताकर उनकी अंधश्रद्धा तथा उनके नाम पर धार्मिक जगत में फैले हुए आडंबरों को दूर करने का प्रयास किया।

समकालीन अन्य मान्यताओं की भाँति इस युग में तीर्थ एवं काशी से मुक्ति-विषयक अंधविश्वासों में रूढ़ि का समावेश होने के कारण मिथ्याडंबर तथा स्वेच्छाचार आदि को स्थान मिल गया था। इसी अंधविश्वास को दूर करने के लिए कबीर ने जीवन के अंतिम क्षणों में काशी छोड़कर मगहर में निवास किया। इसके साथ उन्होंने व्रत तथा उपवास की मान्यता को, जो उस बाह्याचार और पाखंड में परिवर्तित हो चुकी थी, उसका भी विरोध किया और जनमानस को बताया कि प्रत्येक क्षण में ईश्वर की शक्ति संचरित है। उसकी अनुज्ञा के बिना सृष्टि का कोई कार्य संपादित नहीं होता है।

भक्त और भगवान के पारस्परिक सम्मिलन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्ति पश्चात् कबीर को अनुभव हुआ कि यह सारी कर्मकांडी क्रियाएँ व्यर्थ हैं और ईश्वरीय अनुभव केवल भाव की एकात्मकता से हो सकता है जिसमें किसी भी वर्ण, जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का भेद अनावश्यक है। उनका कहना था–

संतो सहज समाधि भली।
साई ते मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अंत चली।
आँख न मूँदूँ, कान न रूँधू, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँस-हँस देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ।
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।

कबीर का काव्य उनके समाज दर्शन का पूरा प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में समर्थ है। उस युग में प्रचलित विभिन्न मत-मतांतरों तथा बाह्याडंबरों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। जिसमें उनका युगप्रवर्तक व्यक्तित्व प्रकाश में आता है।

कबीर के समय में धर्म के पवित्र रूप को बाह्याचारों और असत्य ने इस प्रकार आच्छादित

 ISSN 0975-735X

उनकी सम्यक् पहचान के लिए उनके ललाटों पर तीन रेखाएँ बनाकर ही इन्हें उत्पन्न करता।'

संत कबीर को यह मालूम था कि मंदिर और मस्जिद समाज की एकता को खंडित करने वाले थे, अतएव उनके संबंध में जो भ्रम था उसके विरुद्ध उन्होंने एक बहुत ऊँची आवाज उठाई। उनका कहना था कि यदि परमात्मा मूर्ति में रहता है, मंदिर में उसका निवास है और अल्लाह मस्जिद में रहता है तो दूसरे म्यानों में किसका वास है, उनका स्वामी कौन है?

जिस प्रकार अबोध बालक-बालिका, गुड़ियों-गुड्डों से अपने मन में बहलाते रहते हैं, उसी प्रकार तत्कालीन मानव समाज देवता-द्विज, भवानी आदि की उपासना में अपने कष्टों का परिष्कार करने की योजना बना रहा था। समाज झूठे सुख मानकर उसी में रमा हुआ था। बाह्याडंबरों के कुहासे में भटके हुए समाज को देखकर कबीर ने सीख दी–

पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने वापुये, रहै आंगना टेढ़ा।[7]

कबीर के समय में वेद-पुराण, कुरान आदि ग्रंथों के प्रति समकालीन जनता में अंध-विश्वास और अंधश्रद्धा भी प्रतिष्ठित थी। जिसका उपयोग करके उनके नाम पर पाखंड और आडंबरों का प्रसार हो रहा था। जो समाज की प्रगति में बाधक था। कबीर ने षट्दर्शनों को अनेक पाखंडों का जनक तथा जनसामान्य को उनसे व्याकुल तथा अज्ञानी बताकर उनकी अंधश्रद्धा तथा उनके नाम पर धार्मिक जगत में फैले हुए आडंबरों को दूर करने का प्रयास किया।

समकालीन अन्य मान्यताओं की भाँति इस युग में तीर्थ एवं काशी से मुक्ति-विषयक अंधविश्वासों में रूढ़ि का समावेश होने के कारण मिथ्याडंबर तथा स्वेच्छाचार आदि को स्थान मिल गया था। इसी अंधविश्वास को दूर करने के लिए कबीर ने जीवन के अंतिम क्षणों में काशी छोड़कर मगहर में निवास किया। इसके साथ उन्होंने व्रत तथा उपवास की मान्यता को, जो उस बाह्याचार और पाखंड में परिवर्तित हो चुकी थी, उसका भी विरोध किया और जनमानस को बताया कि प्रत्येक क्षण में ईश्वर की शक्ति संचरित है। उसकी अनुज्ञा के बिना सृष्टि का कोई कार्य संपादित नहीं होता है।

भक्त और भगवान के पारस्परिक सम्मिलन की सर्वोच्च अवस्था प्राप्ति पश्चात् कबीर को अनुभव हुआ कि यह सारी कर्मकांडी क्रियाएँ व्यर्थ हैं और ईश्वरीय अनुभव केवल भाव की एकात्मकता से हो सकता है जिसमें किसी भी वर्ण, जाति, धर्म अथवा संप्रदाय का भेद अनावश्यक है। उनका कहना था–

संतो सहज समाधि भली।
साई ते मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अंत चली।
आँख न मूँदूँ, कान न रूँधू, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँस-हँस देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ।
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।

कबीर का काव्य उनके समाज दर्शन का पूरा प्रतिबिंब प्रस्तुत करने में समर्थ है। उस युग में प्रचलित विभिन्न मत-मतांतरों तथा बाह्याडंबरों का उन्होंने खुलकर विरोध किया। जिसमें उनका युगप्रवर्तक व्यक्तित्व प्रकाश में आता है।

कबीर के समय में धर्म के पवित्र रूप को बाह्याचारों और असत्य ने इस प्रकार आच्छादित

कर लिया था कि असत्य ही सत्य के रूप में प्रतिभासित होने लगा था। अंधविश्वासों ने सद्भावों का स्थान ग्रहण कर लिया। अहिंसा, सत्य और त्याग का स्थान पशुबलि, नरबलि और हिंसा ने ग्रहण कर लिया। कबीर ने इस प्रवृत्ति की कटु आलोचना की तथा देशकाल की दुर्बलताओं को समाज में तांडव करते देखकर क्षोभ व्यक्त किया। इस संदर्भ में डॉ॰ सरनामसिंह का कहना है, 'दुर्बलताओं की वे कटु निंदा और कहीं-न कहीं तीव्र भर्त्सना भी करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि उस भर्त्सना के पीछे उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण भी छिपा हुआ है। फिर भी वे अपने समाज के युग-द्रष्टा थे : इस तथ्य से आँखें नहीं मोड़ी जा सकतीं।'[8]

इसमें संदेह नहीं कि कबीर ज्ञान-ज्योति को महत्त्व प्रदान करते हैं किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि भाव स्नेह को भी समुचित गौरव प्रदान करते हैं। कबीर की वाणी वास्तव में आज भी हमारे सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन के लिए मार्गदर्शन कर रही है।

अस्तु, कबीर ने खंडनात्मक शैली में जो कुछ कहा, उसमें मानवता की पुकार है, किसी धर्म, जाति या वर्ग विशेष से द्वेष या वैमनस्य नहीं। कबीर ने सहज मार्ग को मानव-धर्म का सबसे सुखद एवं सफलभ मार्ग माना है। कबीर ने किसी मतवाद या पंथ का प्रवर्तन नहीं किया, बल्कि मानव-जीवन के लिए जिसे उपयोगी व मंगलकारी मार्ग समझा, अपने ज्ञान व अनुभवों के आधार उसे उपयुक्त समझकर उसका प्रवर्तन किया। कबीर 'संयोग से ऐसे युग-संधि के समय उत्पन्न हुए थे, जिसे हम विविध धर्म साधनाओं और मनोभावों का चौराहा कह सकते हैं। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग ही ऐसा मिला था। वास्तव में वे मुसलमान होकर असल में मुसलमान नहीं थे। वह हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। कबीर ऐसे मिलन बिंदु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व। जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा। जहाँ एक ओर योग-मार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्ति मार्ग—उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे। वह दोनों और देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए मार्गों के गुण-दोष उन्हें दिखाई दे जाते थे।'[9]

कबीर ने सब धर्मों को एक धरातल पर लाने के लिए ही जो प्रयत्न किए, उन सबका संबंध ईश्वर से है। कबीर ने सुंदर मानव जीवन की कल्पना की है। श्रीमती सुचेता कृपलानी ने 'कबीर की देन : भारतीय को' एक विवेचन में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—

'चादर उठाई गई। लाश के स्थान पर ताजे, सुगंधित फूल निकले। आधे-आधे बाँट दिए। हिंदुओं ने उन फूलों का दाह संस्कार किया, मुसलमानों ने दफना दिया। यह था अंत भारत के उस महान संतकवि का जिसने जीवनभर हिंदू-मुस्लिम एकता का उपदेश दिया और मरने पर भी दोनों जातियों को एक होकर रहने का संदेश दिया।'[10]

संदर्भ

1. बैजनाथप्रसाद शुक्ल, कबीर एक नव्यबोध, साहित्य कुटीर अमीनाबाद, लखनऊ, संस्करण : प्रथम, 1975, पृ॰ 3
2. डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, कबीर मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1996, पृ॰ 7
3. श्रीरामकुमार वर्मा, कबीर का रहस्यवाद, साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद, संस्करण : तीन : 1938, रवींद्र कुमार सिंह, संतकाव्य की सामाजिक प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1 : 2000